ORIGINAL RESEARCH PAPER

History

KEY WORDS:

काल द्रव्य की स्वीकृति का विकास

Dr. Nidhi Jain Assistant Professor, S.S. Jain Subhodh College, Jaipur Rajasthan

Dr. Jubeda Mirza Assosiate Professor, Govt. P.G. College Sikar

श्वेताम्बर जैन परम्परा में काल द्रव्य के सन्दर्भ में, अभी जिस प्रकार की मान्यताएँ स्वीकृत है कि – काल एक स्वतंत्र द्रव्य है। यह नित्य, अवस्थित एवं स्व–पर परिणामी है। यह अन्य द्रव्यों की भाँति ही उत्पाद, व्यय एवं ध्रुवत्व से युक्त है। एवं यह वर्तना (परिवर्तन) का मूल हेतु है – इस प्रकार की स्वीकारोक्तियाँ पूर्व काल मे श्वेताम्बर परम्परा में नहीं थी। वस्तुतः पूर्व काल में श्वेताम्बर मनीषियों ने काल को द्रव्य के रूप में कभी स्वीकार्य ही नहीं किया था। इन मनीषियों का मत था कि काल कोई स्वतंत्र द्रव्य नहीं है, अपितु यह जीव एवं पुद्गल की परिवर्तनशील पर्यायों का ही नामान्तर है।[1] इनके द्वारा सातवीं शताब्दी तक काल द्रव्य को जीव और पुद्गल की पर्यायों के रूप ही चिन्हित किया जाता रहा है।

उपाध्याय मुनि कन्हैयालाल जी 'कमल' ने अपने संपादित ग्रन्थ 'द्रव्यानुयोग, भाग – एक' में रेखांकित किया है कि आगमिक युग तक जैन परम्परा में काल को स्वतंत्र द्रव्य मानने के सन्दर्भ में पर्याप्त मतभेद था। आवश्यकचूर्णि (भाग – एक, पृ. 340–34) में काल के स्वरूप के सम्बन्ध में निम्न तीन मतों का उल्लेख हुआ है– (1) कुछ विचारक काल को स्वतन्त्र द्रव्य न मानकर पर्याय रूप मानते हैं। (2) कुछ विचारक उसे गुण मानते हैं, तथा (3) कुछ विचारक उसे स्वतन्त्र द्रव्य मानते हैं। श्वेताम्बर परम्परा में सातवीं शती तक काल के सम्बन्ध में उक्त तीनों विचारधाराएँ प्रचलित रहीं हैं और श्वेताम्बर आचार्य अपनी – अपनी मान्यतानुसार उनमें से किसी एक का पोषण करते रहे हैं। जबकि दिगम्बर आचार्यों ने एक मत से काल को स्वतन्त्र द्रव्य माना था, माना है। जो विचारक काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते थे उनका तर्क यह था कि यदि धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल और जीव द्रव्य अपनी – अपनी पर्यायों (विभिन्न अवस्थाओं) में स्वतः ही परिवर्तित होते रहते हैं तो फिर काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने की क्या आवश्यकता है? आगम में भी जब भगवान महावीर से यह पूछा गया कि काल क्या है? तो इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था कि काल जीव – अजीवमय है अर्थात जीव और अजीव की पर्यायें ही काल हैं। विशेषावश्यक भाष्य में कहा गया है कि वर्तना अर्थात परिणमन या परिवर्तन से भिन्न कोई काल द्रव्य नहीं है। इस प्रकार जीव और अजीव की परिवर्तनशील पर्यायों को ही काल कहा गया है। कहीं – कहीं काल को पर्याय द्रव्य कहा गया है। इन सब विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि काल कोई स्वतन्त्र द्रव्य नहीं है। चूंकि आगम में जीव – काल और अजीव – काल ऐसे काल के दो वर्गों के उल्लेख मिलते हैं अतः अधिकतम श्वेताम्बर जैन विचारकों ने यह माना कि जीव और अजीव द्रव्यों की पर्यायों से पृथक काल द्रव्य का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। दिगम्बरों एवं श्वेताम्बरों में काल के सम्बन्ध में जो मतभेद था, वह तत्त्वार्थसूत्र में प्रस्तुत काल विषयक सूत्र से भी स्पष्ट हो जाता है। दिगम्बर काल द्रव्य विषयक सूत्र को 'कालश्च' एवं श्वेताम्बर 'कालश्चेत्येक' रूप में प्रस्तुत करते हैं। दिगम्बर परम्परा में मान्य सूत्र का अर्थ है कि काल भी द्रव्य है, जबकि श्वेताम्बर परम्परा में मान्य सूत्र का अर्थ किया जाता है कि काल को कुछ विचारक द्रव्य मानते हैं। इसका फलितार्थ यह हुआ कि श्वेताम्बर विचारकों से पृथक दिगम्बर विचारक काल को द्रव्य के रूप में मान्यता देते हैं।

उपाध्याय मुनि कन्हैयालाल जी वहीं व्याख्यायित करते हैं कि प्राचीन स्तर के आगमों में सर्वप्रथम उत्तराध्ययन सूत्र में काल का स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में उल्लेख पाया जाता है। जैसा कि हम पूर्व में संकेत कर चुके हैं कि न केवल उमास्वाति (तत्त्वार्थसूत्र) के युग तक अर्थात ईसा की तृतीय चतुर्थ शताब्दी तक अपितु चूर्णिकाल अर्थात ईसा की सातवीं शती तक काल स्वतन्त्र द्रव्य है या नहीं – इस प्रश्न पर श्वेताम्बर जैन दार्शनिकों में मतभेद था। इसीलिए तत्त्वार्थ सूत्र के भाष्यमान पाठ में उमास्वाति को यह उल्लेख करना पड़ा कि कुछ विचारक काल को भी द्रव्य मानते हैं। क्योंकि उस समय तक श्वेताम्बर मनीषियों ने काल को स्वतंत्र द्रव्य के रूप में मान्यता नहीं दी थी।[1] इनके अनुसार सर्व द्रव्यों की जो पर्याये है, वे ही काल हैं। इस मान्यता के विरोध में दूसरे पक्ष के द्वारा यह कहा गया कि अन्य द्रव्यों की पर्यायों से पृथक काल स्वतन्त्र द्रव्य है क्योंकि किसी भी पदार्थ में बाह्य निमित्त अर्थात अन्य द्रव्य के उपकार के बिना स्वतः ही परिणमन सम्भव नहीं होता है। जैसे ज्ञान आत्मा का स्वलक्षण है, किन्तु ज्ञानरूप पर्यायें तो अपने ज्ञेय विषय पर ही निर्भर करती हैं। आत्मा को ज्ञान तभी हो सकता है जब ज्ञान के विषय अर्थात ज्ञेय वस्तु तत्त्व की स्वतन्त्र सत्ता हो। अतः अन्य सभी द्रव्यों के परिणमन के लिए किसी बाह्य निमित्त को मानना आवश्यक है। जिस प्रकार गति को जीव और पुद्गल का स्वलक्षण मानते हुए भी गति के बाह्य निमित्त के रूप में धर्म द्रव्य की स्वतन्त्र सत्ता मानना आवश्यक है, उसी प्रकार चाहे सभी द्रव्यों में पर्याय परिवर्तन की क्षमता स्वतः हो, किन्तु उनके निमित्त कारण के रूप में काल द्रव्य को स्वतन्त्र द्रव्य मानना आवश्यक है। यदि काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं माना जायेगा तो पदार्थों के परिणमन (पर्याय परिवर्तन) का कोई निमित्त कारण नहीं होगा। परिणमन के निमित्त कारण के अभाव में पर्यायों का अभाव होगा और पर्यायों के अभाव में द्रव्य का भी अभाव हो जायेगा, क्योंकि द्रव्य का अस्तित्व भी पर्यायों से पृथक नहीं है। इस प्रकार सर्वशून्यता का प्रसंग आ जायेगा। अतः पर्याय परिवर्तन (परिणमन) के निमित्त कारण के रूप में काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानना ही होगा।[1]

काल को स्वतंत्र तत्त्व मानने वाले दार्शनिकों के इस तर्क के विरोध में यह प्रश्न उठाया गया कि यदि अन्य द्रव्यों के परिणमन (पर्याय परिवर्तन) के हेतु के रूप में काल नामक स्वतन्त्र द्रव्य का मानना आवश्यक है तो फिर अलोकाकाश में होने वाले पर्याय परिवर्तन का हेतु (निमित्त कारण) क्या है? क्योंकि अलोकाकाश में तो आगम में काल द्रव्य का अभाव माना गया है। यदि उसमें काल द्रव्य के अभाव में पर्याय परिवर्तन सम्भव है, तो फिर लोकाकाश में भी अन्य द्रव्यों के पर्याय परिवर्तन हेतु काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानना आवश्यक नहीं है। पुनः अलोकाकाश में काल के अभाव में यदि पर्याय परिवर्तन नहीं मानोगे तो फिर पर्याय परिवर्तन के अभाव में आकाश द्रव्य में द्रव्य का सामान्य लक्षण 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य' सिद्ध नहीं हो सकेगा और यदि अलोकाकाश में पर्याय परिवर्तन माना जाता है तो उस पर्याय परिवर्तन का निमित्त काल तो नहीं हो सकता क्योंकि उसका वहाँ अभाव है। इस तर्क के प्रत्युत्तर में काल को स्वतन्त्र द्रव्य मानने वाले आचार्यों का प्रत्युत्तर यह है कि आकाश एक अखण्ड द्रव्य है उसमें अलोकाकाश एवं लोकाकाश ऐसे जो दो भेद किए जाते हैं वे मात्र औपचारिक है। लोकाकाश में काल द्रव्य के निमित्त से होने वाला पर्याय परिवर्तन सम्पूर्ण आकाश द्रव्य का ही पर्याय परिवर्तन है। अलोकाकाश और लोकाकाश दोनों आकाश द्रव्य के ही अंश है, वे एक – दूसरे से पृथक नहीं हैं। किसी भी द्रव्य के एक अंश में होने वाला परिवर्तन सम्पूर्ण द्रव्य का परिवर्तन माना जाता है, अतः लोकाकाश में जो पर्याय परिवर्तन होता है वह अलोकाकाश पर भी घटित होता है और लोकाकाश में पर्याय परिवर्तन काल द्रव्य के निमित्त से होता है।[1] अतः लोकाकाश और अलोकाकाश दोनों के पर्याय परिवर्तन का निमित्त काल द्रव्य ही है।

काल द्रव्य की स्वायत्ता विषयक स्वीकारोक्ति के बाद श्वेताम्बर परम्परा में काल द्रव्य के संख्यात्मक विवाद का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। संख्या की दृष्टि से सभी दिगम्बर एवं अधिकांश श्वेताम्बर जैनाचार्यों ने काल द्रव्य को एक नहीं, अपितु अनेक माना है। उनका कहना है कि धर्म, अधर्म, आकाश की तरह काल एक और अखण्ड द्रव्य नहीं हो सकता है। काल द्रव्य अनेक है क्योंकि एक ही समय में विभिन्न व्यक्तियों में अथवा द्रव्यों में जो विभिन्न पर्यायों की उत्पत्ति होती है, उन सबकी उत्पत्ति का निमित्त कारण एक ही काल नहीं हो सकता है। अतः काल द्रव्य को अनेक या असंख्यात द्रव्य मानना होगा। पुनः प्रत्येक पदार्थ की भूत, भविष्य की अपेक्षा से अनन्त पर्यायें होती है और उन अनन्त पर्यायों के निमित्त अनन्त कालाणु होंगे, अतः कालाणु अनन्त माने गये है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि काल द्रव्य को असंख्य कहा गया किन्तु कालाणु अनन्त माने गये ऐसा क्यों? इसका उत्तर यह है कि काल द्रव्य लोकाकाश तक सीमित है और उसकी इस सीमितता की अपेक्षा से उसे अनन्त द्रव्य न कहकर असंख्यात द्रव्य कहा गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुरेश सिसोदिया जैन धर्म के सम्प्रदाय पृष्ठ 55 प्र. आगम–अहिंसा–समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर (राज.) 1994
2. हस्तीमल जैन धर्म का मौलिक इतिहास (भाग एक) पृष्ठ 627 प्र. सम्यकज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर 2001
3. कैलाशचंद्र जैन जैन धर्म पृष्ठ 312 प्र. भारतीय दिगम्बर जैन संघ पुस्तकमाला, मथुरा 1966
4. सुरेश सिसोदिया जैन धर्म के सम्प्रदाय पृष्ठ 63 – 91 प्र. आगम–अहिंसा–समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर (राज.) 1994